IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# भक्ति आंदोलन के उदय की पृष्ठभूमि

**रोहित सिंह**

**शोधार्थी, हिन्दी विभाग**

**अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय**

**अलीगढ़**

## सारांश

भक्ति आंदोलन के उदय की पृस्ठभूमि नामक इस लेख में भक्ति का दक्षिण भारत में कैसे होता है, यह दर्शाया गया है और उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का प्रभाव समझने का प्रयास किया गया है और उत्तर भारत में भक्ति के उदय को लेकर हिंदी साहित्य के इतिहास में अधिकाधिक चर्चा हुई है तथा इस पर हर एक हिंदी साहित्य इतिहासकार ने लेखन का कार्य किया है और इस पर आधुनिक लेखकों के बीच खूब गर्मा–गर्मी का माहौल रहा है

**प्रमुख शब्द**–सांस्कृतिक, उत्पत्ति, सामाजिक, इतिहासकार, मनोवैज्ञानिक

## प्रस्तावना

भक्ति आन्दोलन जैसा व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन कैसे और क्यों पैदा हुआ? इसे लेकर इतिहास–आन्दोलन में कोई राय नहीं है। यद्यपि हिन्दी की आकादमिक दुनिया रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के निष्कर्षों को ही दुहराती हुई आगे बढ़ती रही हैं। लेकिन इरफान हबीब, हरबंस मुखीया और सतीशचन्द्र जैसे इतिहासकारों ने भक्ति आन्दोलन के उद्‌भव के कारणों की खोज तत्कालीन समय और समाज मे की। इरफान हबीब यदि दस्तकारी और उससे जुड़ी जातियों के विकास को इसका मुख्य कारण मानते हैं तो हरबंस मुखिया नगरों के विकास को। सतीशचन्द्र इनसे भिन्न राय रखते हैं। उनके अनुसार तुर्क–अफगान शासन व्यवस्था कायम होने के कारण सदियों से कायम ब्राह्मण–क्षत्रिय समझौता कमजोर पड़ा, जिसका ताभ दबी हुई नीचे की जातियों ने उठाया।

"शंकराचार्य के मायावाद के विरूद्ध जो लोक–भावना जन्म ले रही थी, उसे रामानुज, स्वामी रामानन्द, महाप्रभु बल्लभ आदि आचार्यों ने दार्शनिक आधार प्रदान किया। इन आचार्यों के चिन्तन में जनोन्मुखता का वह संस्पर्श था, जो मनुष्य की सामाजिक और आध्यात्मिक मुक्ति के विराट प्रश्नों से परिचालित था।"

'ब्रह्मा सत्यं जगन्मिया' जैसे सिद्धान्त का खण्डन कर इन आचार्यों ने जीवन और जगत के प्रति आत्मीय लगाव का नया दृष्टिकोण विकसित किया। ब्रह्मा के निराकार रूप की जगह उसके एक ऐसे लोक गृही रूप का सृजन किया जो जनता के चित में रस घोलने लगा। इन दार्शनिक आचार्यों के प्रयास से ईश्वर, जीवन–जगत्, ब्रह्मण –शूद्र, हिन्दु–मुसलमान, लोक–परलोक, पुरूष–नारी आदि के प्रति एक नये दृष्टिकोण का जन्म हुआ। ईश्वर और मनुष्य के नये सत्य उद्धटित हुए। अध्यात्मिक क्षितिज पर नये सूर्य का उदय हुआ। ज्ञान के नये वातायन खुले और संतप्त मनुष्यता को जीने का नया आधार तथा नयी शैली मिली।

भक्ति आन्दोलन एक व्यापक साहित्यिक सांस्कृतिक परिघटना थी। इसकी उत्पत्ति को लेकर विद्वानों के बीच लम्बा विमर्श रहा है जिसने हिन्दी आलोचना को बहुत समृद्ध किया है। भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के बीच का विमर्श सर्वविदित है। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास की आलोचना करते हुए प्रसंगवश का उन्होंने भक्ति की भी व्याख्या की है। भक्ति की जो व्याख्या की है वह लौकिक है, शुक्ल जी करूणा और प्रेम को दो स्वतंत्र भाव मानते थे, सूरदास को उन्होंने प्रेम का तथा तुलसीदास को करूणा का कवि माना है, किन्तु भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति के संदर्भ में उनकी मान्यता है, कि भक्ति की भावना हिन्दी भाषी क्षेत्र में मुसलमानों से पराजय के कारण पैदा हुई, इतने अभी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी भी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की और ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था? द्विवेदी जी शुक्ल जी से सहमत नहीं हैं। उन्होंने लिखा है– आज से लगभग हजार वर्ष पहले हिन्दी साहित्य बनना शुरू हुआ था। इन हजार वर्षों में हिन्दी भाषीजन समुदाय क्या सोच समझा रहा था, इस बात की जानकारी का एकमात्र साधन हिन्दी साहित्य ही है– एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की सम्पत्ति है इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनैतिक उत्थान–पतन के साथ अंगागि भाव से सम्बन्ध रखता है, और ऐसा न भी हो तो भी वह एक निरन्तर पतनशील जाति की चिन्ताओं का मूल प्रतीक है जो अपने आप में कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ। मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ पर जोर देकर कहना चाहता हूँ कि इस्लाम न भी आया होता तो भी वैसा ही होता जैसा आज है।

प्रगतिशील आन्दोलन ने भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में उक्त विमर्श को एक नया परिप्रेक्ष्य दिया और उसने भक्ति आन्दोलन की व्याख्या मार्क्सवादी दृष्टि के साथ की डॉ0 रामविलाश शर्मा प्रखर मार्क्सवादी समीक्षक थे। उनकी इतिहास दृष्टि मार्क्सवादी है। वे इतिहास की व्याख्या करते हैं। वे द्वन्द्व न्याय के आधार पर समाज का विवेचन करते हैं सामाजिक न्याय को महत्व देते हैं। प्रत्येक युग में जनता के स्वर को पहचानने की कोशिश करते हैं। सामन्ती और पूंजीवादी में साहित्य की मूल प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए सहित्य की प्रगतिवादी भूमिका बताते हैं। प्रत्येक युग के अन्तविरोधों की व्याख्या कर साहित्य की व्याख्या करते हैं। इसलिए साहित्य के मूल्यांकन के लिए विवेकपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि का होना आवश्यक मानते हैं। वे यह मानते हैं कि वर्ग मुक्त समाज में मानवतावादी कवियों में भी असंगतियों का पाया जाना स्वाभाविक है। मार्क्सवाद में पूरी आस्था रखते हुए भी डॉ0 शर्मा अपने निर्णयों में संकीर्ण नहीं हैं। किन्तु यह स्पष्ट करना

आवश्यक है कि रामविलास शर्मा के समकालीन और परवर्ती आलोचकों ने उनसे अपनी असहमति व्यक्त की है। किन्तु भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में इनने हिन्दी समीक्षा को बहुत समृद्ध किया है। समकालीन समीक्षा में भी भक्ति आन्दोलन की चर्चा प्रायः मिलती है। डॉ0 नामवर सिंह से लेकर रामस्वरूप चतुर्वेदी तक ने इस आन्दोलन के महत्व को रेखांकित किया है। अतः पुनर्विचार और पुर्नपरीक्षण के क्रम में मुक्तिबोध का विशेष महत्व है।

जार्ज ग्रियर्सन ऐसे पहले इतिहासकार थे जिन्होने हिन्दी साहित्य के इतिहास को कालखण्डों में विभाजित करके वैज्ञानिक पद्धति अपनाई लेकिन भक्ति आन्दोलन के मूल्याकन के क्रम में उन्होंने तथ्यहीन और भ्रमक स्थपनाऐं दीं। जिन्होंने भक्ति आन्दोलन व्यापक और उसके प्रभाव को स्वीकार किया।

उन्होने लिखा कोई भी मनुष्य जिसे पन्द्रहवीं तथा बाद की शताब्दियों का साहित्य पढ़ने का मौका मिला है, उस भारी व्यवधान को लक्ष्य किए बिना नहीं रह सकता, जो पुरानी और नयी धार्मिक भावनाओं में विद्यमान हैं।

वे आगे लिखते हैं– "बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अन्धकार के ऊपर एक नयी बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नही जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चित नहीं कर सकता।"

मध्य कालीन धर्मों में हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई प्रमुख थे। लोकविश्वासों पर आधारित लोकधर्म की निष्ठा किसी धर्म विशेष के प्रति न थी। उसका धर्माचार परंपरागत और चमत्कार – प्रभावित था। आदिवासियों का धर्म अधिकतर उन्ही तक सीमित था।

परंतु संपर्क द्वारा वे परस्पर न्यूनाधिकार रूप में अनुप्राणित होते रहते थे और जाने–अनजाने एक–दूसरे का अनुकरण करने मे भी हिचकते न थे। फिर भी, उन दिनों हिंन्दू–इस्लाम दो ही प्रधान धर्म थे। सिक्खों के देवी–देवता प्रायः हिंदूओं के ही थे, पर उनकी आचार पद्धति पर आगे चलकर सैनिक वृन्ति की छाप पड़ी। जैन धर्म का प्रचार जहां पश्चिम–दक्षिण के क्षेत्रों में अधिक था, वहां बौद्ध धर्म पूर्वी प्रांतों में ही सिमट कर रह गया था। पारसीमत 721 ई0 में भारत में अपना पहला कदम रख चुका था। लगभग इसी समय इस्लाम धर्म व्यापारियों के माध्यम से मालाबार पहुँचा था। यहूदी ईसाइयों से पहले ही आ गये थे और इसाई धर्म फादर टॉमस द्वारा दक्षिण में प्रवेश पा चुका था। जिसका प्रचार कार्य परवर्ती काल में प्रारंभ हुआ। हिंन्दू धर्म इस्लाम के संपर्क से मात्र व्यक्तिगत साधना का केंद्र न रह कर सामूहिक साधना का रूप धारक करने लगा था और उसमें आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ उभरने लगी थी। फलस्वरूप प्रायः सभी धर्मों में युगानुरूप परिस्थिति क अनुसार पंथो, संप्रदायों और उपसंप्रदायों तक की सृष्टि होने लगी, जिनका मुख्य उद्देश्य आत्मनिरीक्षण और परिस्थिति परीक्षण द्वारा आवश्यक सुधार करके परम्परागत आचार–विचारों को किसी–न–किसी रूप में प्रक्षय दे कर उन्हे जीवित रखना था। इस प्रयास में वैष्णवधर्म ने भगवतसंप्रदाय के रूप में नेतृत्व किया और व्यापक प्रभाव डाला, जिसके माध्यम से भक्ति–आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। उसके अनुकरण में अन्य धर्मों ने भी अपनी–अपनी सीमाओं में आवश्यक संशोधन परिवर्द्धन किये।

पहली बात यह है कि शुक्ल जी का बल तत्कालीन परिस्थिति पर आधिक है। इसलिए वे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के संदर्म में साहित्य को देखते है। यही कारण है

कि 'आदिकाल' का नामकरण शुक्ल जी ने 'वीरगााथा काल' किया है। आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति को देखें तो यह समय इस्लाम के आक्रमण का काल है। शुक्ल जी ने उस समय के साहित्य का विश्लेषण इस्लाम आक्रमण कारियों के विरूद्ध हिंदू राजाओं के विरतापूर्ण युद्ध की गाथाओं के रूप में किया है। इसी क्रम में भक्ति काल की व्याख्या को भी देखा जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों के दबाव के परिणामस्वरूप शुक्ल जी ने भक्तिकाल के आरंभ के कारण की व्याख्या 'मुस्लिम आक्रमणकारियों से पराजित और अपने पौरूष से हताश जाति का भगवान की शक्ति और करूण की और ले जाना' कहकर की है। यह आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि का परिणाम है। इसे ध्यान में रखकर ही शुक्ल जी की भक्तिकाल के आंरभ को व्याख्या को ठीक से समझा जा सकता है। अपने विश्लेषण मे शुक्ल जी ने उस समय के इतिहास के केंद्री करण की विशेषता को रेखांकित किया है। केंद्रीकरण के परिणस्वरूप आर्थिक सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में शुक्ल जी के समय इतिहास में शोध नहीं हुआ था इस परिवर्तन को हम पहले देख चुके हैं। हिंदु मंदिरों को तोड़ने का कार्य युद्ध के समय ही होता था। यह इतिहासकारों के परवर्ती शोध से पता चलता है। इसकी चर्चा भी हम कर चुके हैं। इसलिए शुक्ल जी के विश्लेषण की सीमा बहुत दूर तक उस समय के शोध की सीमा है।

हिन्दु धर्म के अंतर्गत शैव, शक्ति, सौर, स्मार्त गाज पत्य की गणना की जाती थी। पंचदेवोपासना के परिणाम स्वरूप इनमें से सौर और गाणपत्य वैष्णव धर्म में अंर्तलीन हो चले। शेष तीनों में से शैव और शक्त धर्म कदाचित वैष्णव धर्म से अधिक प्राचीन थे।

व्यावहारिक दृष्टि से भारतीय धर्म साधना को तीन भागों में वाँट सकते हैं।

1. ज्ञान प्रधान साधना
2. कर्म प्रधान साधना
3. भावना प्रधान साधना

इन तीनो भारतीय धर्म साधना को ज्ञान–योग, कर्म–योग, एवं भक्ति योग की संज्ञा दी गई है।

भारतीय धर्म साधना में इन तीनों पक्षों का ही विकास दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों का चिन्तन एवं बौद्धो का सम्यक् ज्ञान पहले रूप को प्रस्तुत करता है। वैदिक कर्म–काण्ड और रामायण का प्रधान धर्म दूसरे पक्ष के चरम विकास को प्रस्तुत करता है आगे चलकर समाज कर दृष्टिकोण भी ज्ञान एवं कर्म के स्थान पर भावना की ओर अधिक उन्मुख हो गया तो भावना प्रधान धर्म का विकास हुआ।

अतः इनको भक्ति आन्दोलन के नाम से भी पुकारा जाता है।

भक्ति आन्दोलन और धार्मिक आन्दोलन मे ज्यादा अन्तर नही माना जा सकता हमको इन दोनो को एक ही रूप में समझना चाहिऐ।

भक्ति–आन्दोलन में सबसे पहले हमें दो बातें स्पष्ट कर लेना ज़रूरी है।

पहली बात तो यह है कि 'भक्ति' शब्द का प्रयोग उसके वास्तविक तथा सही अर्थ में बहुत कम हुआ है।

भक्ति शब्द विशेष भावनाओं को सूचित करता है। जिससे किसी के प्रति श्रद्धा और प्रेम के मिले–झुले रूप का विकास होता है।

श्रद्धा और प्रेम के मिश्रण के अभाव मे जिस भाव का अनुभव होता है। उसे भक्ति का नाम देना शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असंगत है।

लेकिन कभी–कभी भाषा विज्ञान के अनुसार शब्दों के अर्थ भी उनको प्रयोग के साथ–साथ परिवर्तित और विकृत होते हैं।

## संन्दर्भ

1. गोपश्वर सिंह , भक्ति आन्दोलन और काव्य, पृष्ठ–13–15
2. डा0 नगेन्द्र , हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–94
3. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–180